ISSN 2278-8808 IMPACT FACTOR: 1.38
An International Peer Reviewed
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

वैदिक नैतिक मूल्य एक आदर्श समाज का जनक

पल्लवी सिंह, Ph. D.

एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा

प्रकृति के सभी प्राणी अपनी स्वाभाविक स्थिति में जीवन जीते हैं तथा अस्वाभाविक स्थिति में उनका क्षय हो जाता है। मनुष्य इसके अतिरिक्त एक तीसरी सांसारिक स्थिति में (संस्कृति) में जीवन यापन करता है, यही तृतीय स्थिति धर्म की बुनियाद है, जो अन्य प्राणियों से मनुष्य को विशिष्ट बनाता है। आदिकाल से ही मनुष्यों के सर्वांगीण विकास के लिए प्राचीन ऋषियों ने व्यष्ठि एवं समष्टि स्तर पर धर्म की स्वीकृति की है। कणाद् के अनुसार धर्म –

"यतोऽभ्युदयनि श्रेयस् सिद्धिः सः धर्मः।" अर्थात् लौकिक अभ्युदय और अलौकिक श्रेयस सिद्धि (मोक्ष) की सिद्धि ही धर्म कहलाता है। सामाजिक अभ्युदय के लिए समाज का सद्भावनापूर्ण मर्यादित व्यवहार अनिवार्य है। वेदों में 'ऋत्' शब्द इसका समर्थक है। ऋग्वेदीय देवता प्रायः किसी न किसी प्राकृतिक पदार्थ या दृश्य के मानवीकृत रूप हैं। वह स्वयं व्रतनिष्ठ और प्राणीमात्र को व्रत एवं सदाचार की प्रेरणा प्रदान करते हैं। वैदिक कवियों ने देवताओं से जिन नैतिक आदर्शों की प्रेरणा ली है तथा उन पर दृढ़ता से बोलने की इच्छा व्यक्त की है, वे मानव जाति की अमूल धरोहर हैं।

'ऋत्' के सिद्धान्त वेदों की मौलिक देन हैं आचार्य यास्क के अनुसार 'ऋत' का अर्थ – उदक, सत्य एवं यज्ञ क्रिया है।[1] सायण ने ऋग्वेद के मन्त्रों के भाष्य में 'ऋत्' शब्द के प्रायः ये ही अर्थ किये हैं।[2] इसके अतिरिक्त सायण ने ऋत को 'कर्मफल', 'स्त्रोत' एवं 'गति' अर्थ का वाचक भी माना है। पाश्चात्य विज्ञान भाष्यकार ग्रिफिश के अनुसार 'ऋत्' शब्द का अर्थ – शाश्वत विधान (Eternal Law) अथवा पवित्र नियम (Holi order) है।[3] दैवी जगत् में 'ऋत्' वह अनन्त एवं शाश्वत विधान है जिसके अधीन धरती, आकाश, सूर्य, चन्द्र, रात, दिन, मास एवं ऋतुएँ आदि सब मर्यादित होकर अपने–अपने कार्य करती हैं। मानव जगत में 'ऋत्' उन नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अधिष्ठाता है, जो जीवन के प्रेरक हैं और जिन पर समाज प्रतिष्ठित है। वस्तुतः जगत् की व्यवस्था के पीछे सिद्धान्त को ही वेद में 'ऋत्' कहा है। आधुनिक समाज भी इससे प्रेरित हो आज एक नैतिक व्यवस्थायुक्त पर्यावरण के अन्तः प्रगति को या धर्मयुक्त समाज भी इससे प्रेरित हो आज एक नैतिक व्यवस्थायुक्त पर्यावरण के अतः प्रगति को या समाज का निर्माण कर लौकिक अभ्युदय को प्राप्त कर सकता है।

विकास के चरमावस्था में ऋतनैतिकता एवं सदाचार का द्योतक बन गया, क्योंकि 'ऋत्' के विपरीत भाव का सूचक अनश्त शब्द लौकिक संस्कृत में असत्य है। प्राकृतिक जगत् का 'ऋत्' ही मानव जगत में नैतिक आचरण का आधार है। वैदिक 'ऋत्' व्रत, अनुष्ठान एवं सत्य आचरण आदि में नैतिकता के वह निगम दृष्टिगोचर हुए जो अलौकिक दार्शनिक गाम्भीर्य को लिए हुए हैं।

समस्त मानव कल्याण हेतु आदित्य से प्रार्थना की गयी है कि 'ऋत्' पर चलने वालों के मार्ग को सुगम एवं प्रशान्त करें। **सुगः पन्थाः अनश्क्षर आदित्यास ऋतुं यते।**[4] देवता भी 'ऋत्' द्वारा ही अमरत्व प्राप्त करते हैं।

'ऋत्' अनेक प्रकार की सुख समृद्धि शान्ति का स्रोत है। यह 'ऋत्' ही भावना, पापों एवं गहरे दुःखों का नाशक है। मानव को उद्बोधन देने वाली, यह मनुष्य को मानवीय गुणों से युक्त करता है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा का आधार ऋत् वरूण को सम्बोधित कर ऋषि कहता है – हे राजन आप 'ऋत्' से अनृत कौ दूर करते हुए मेरे राष्ट्र के आधिपत्य को प्राप्त करो।

"ऋतेन राजन्ननृतं विविन्चन् मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि।"[5]

यहाँ ऋत् का अर्थ सत्य किया गया है और यह सत्य ही वस्तुतः व्यक्तिगत, राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन के प्रेरक नैतिक आदर्शों का एकमात्र आधार है।

मन्त्रदष्ट्रा ऋषियों को यह विश्वास था कि 'ऋत्' के मार्ग पर चलने से पाप आदि का आविर्भाव नहीं होता तथा समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं। अतएव हे आदित्य ऋत पर चलने वाले के लिए उसके मार्ग को सुगम एवं कंटक रहित कर दो।[6] एक अन्य मन्त्र में मित्रावरूण से यह कामना की गयी है कि जैसे नौका द्वारा नदी पार की जाती है, उसी प्रकार हम 'ऋत्' के पथ द्वारा दुराचरणों से पार हो जाये – **ऋतस्य मित्रावरूणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम।** दैवीय जगत में ऋत् का प्रथम पुत्र अग्नि को उसी प्रकार ब्राह्मण को मानव जगत में, ऋत् को **प्रथमजा**[7] बताया गया है। यह एक मात्र साधन है, जिसके द्वारा समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया जा सकता है। प्राकृतिक संतुलन नैतिक आचरण से सम्भव है, तभी तो ऋषि **"मधुया ऋतायते मधु या ऋतायते मधु क्षारन्ति सन्धवः।**[8] ऋत पालन के लिए हवाएँ माधुर्ययुक्त होती हैं, नदियाँ माधुर्य बहाती हैं। सुख समृद्धि का नियमावली मानवीय जीवन का अभिन्न अंग है। इसलिए मानवीय संकल्प अपेक्षित है– ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया[9] कि वह सफलतापूर्वक ऋत मार्ग का अनुसरण करें।

अहिंसा की भावना की उदात्तता ऋग्वेद में भी दर्शित है। यह आदर्श वैदिक कवियों ने आदर्श पूर्व पुरुषों से प्राप्त किया है। एक स्थान पर इन्द्र से धन समृद्धि की कामना की है। सद्भावना एवं अहिंसा की भावना को ही देवताओं की दया प्राप्त करने का साधन माना गया है।[10] ऋग्वेद के दो रूद्र मंत्रों में हे रूद्र आप इनमें से न तो वृद्धो का वध करें और न ही युवकों, बच्चों एवं गर्भस्थ शिशुओं का। आप हमारे माता–पिता और हमारे प्रिय शरीरों पर भी हिंसा न करें। ऋषि मानवीय शान्ति एवं सहस्थिरता का आह्वान करता है। यहाँ हिंसक व्यक्ति के प्रति दण्ड एवं घृणा की भावना भी विद्यमान

है। मनु ने भी धर्म के लक्षण में सर्वप्रथम अहिंसा को ही श्रेष्ठ बताया है।[11] ऐसे उच्च विचारों एवं नैतिक भावों से अभिप्रेरित महाभारत में युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए भीष्म ने कहा है – "अहिंसा ही परम धर्मः, परम तपः एवं परम सत्यः है[12], अहिंसा से धर्म का प्रादुर्भाव होता है। जो श्रेयस का साधन है। मैत्री भावना– हम मैत्री भाव हों, सभी देव मित्रता को प्राप्त हों, सच्चा मार्ग दर्शक बनें।[13] हृदय में पवित्रता का संचार हो। ऋग्वेद में अग्निदेव से ऐसी प्रार्थना है सच्चे मित्र के भाँति आप हमारा मार्ग दर्शन करें।[14]

तभी संस्कृत सुहृद शब्द ही हृदय से अच्छी भावना ही सम्प्रति जनमानस की अभ्युदय का कारण है। मित्र का त्याग श्रेयस्कर नहीं मित्रता जीवन का अनिवार्य अंग है। सुहृद के बिना जीवन ही व्यर्थ है।[15]

विश्व मैत्री (विश्व बन्धुत्व) – ऋग्वेदीय मंत्र में अग्नि को मानव का मित्र, बन्धु, प्रिय सखा कहा गया है। इस विशाल पृथ्वी को बन्धु कहा है। **बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।**[16] यह नैतिक वाक्य विश्वबन्धुत्व की भावना को जन्म देती है। यजुर्वेदी में यह कामना की गयी है कि मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ और सब एक दूसरे की सद्भावनापूर्ण दृष्टि से दखें, यह उदति भावना अथर्ववेद में अधिक रमणीयता से व्यक्त है। जितनी भी दिशाएँ हैं मेरी मित्र हो जायें। **सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।**[17]

एकता की भावना ऋग्वेद के अन्तिम सुक्त में कर्म में एकता की भावना पर बल दिया गया है। देवताओं की एक होकरर दृवि एक साथ ग्रहण करने की बात है। उसी प्रकार मनुष्य भी एक साथ होकर चलें, बोलें और उनका मन एक हो, अर्थात् मनन, चिंतन, विचारों में एकता एवं समानता हो यह प्रार्थना है। वैदिक आदर्श विश्व को ही एक परिवार मानता है। इस भावना का जनक कहा जा सकता है। यह सामाजिक जीवन का मूल आधार है। अथर्ववेद में तो सबके समान जल, समान, अन्न एवं सबके समान रूप से एक ही जुए में जोड़ने का वर्णन है। **समानी प्रपा सह वो ऽन्नभागः समाने यीक्त्रे सह वो युनज्मि** इस प्रकार के वर्णन में साम्यवादी विचारधारा का आभास मिलता है।

लोक कल्याण की भावना – एक दूसरे के कल्याण एवं रक्षा के लिए तत्पर रहना ही लोकाभ्युदय का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक मंत्र में उपदेश दिया गया है– प्रत्येक पुरुष की रक्षा करे दूसरे पुरुष की सब ओर से रक्षा करे। प्राणियों के कल्याण की कामना जनमानस ही नहीं वरन् पशुओं की रक्षा के लिए ऋग्वेद में प्रार्थनाएँ मिलती हैं। अदिति एवं सोमदेव से पशुओं की रक्षा एक स्थान पर द्विपाद और चतुष्पाद प्राणियों को हम सुख दें ताकि सबको कल्याण प्राप्त कराइये। ऋग्वेदीय ऋषियों द्वारा इस उदान्त भावनाओं में बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के इस सिद्धान्त का उद्भव दिखता है, जो नैतिक मूल्यों का आधार स्तम्भ है। गीता में **सर्वभूतहितेरक्षः**[18] से कल्याण की सर्वोच्च इच्छा व्यक्त की गयी है। ब्रह्मपद पाने के लिए प्राणी कल्याण को प्रमुखता दी गयी है। दान की भावना सद्गृहस्थी की विशेषता है। उसे दान प्रवण होना ही चाहिए। आतिथ्य सत्कार तो हमारे नैतिकता का पर्याय है। ऋग्वेद में **"आतिथ्य मस्मै चक्रमा सुदान्वे"**[19] दक्षिणासूत्र में दानी व्यक्ति को भौतिक सुखों का अधिकारी बताया

गया है। उदार नैतिक भावनाओं से ओतप्रोत दानशील समाज समस्त मानवीय पर्यावरण के लिए सुख एवं समृद्धि की आधारशिला माने जाते हैं।

अतः ऋषियों ने मानवीय गुणों की भूरि–भूरि प्रशंसा तथा इन गुणों से संयुक्त व्यक्ति की सुरक्षा एवं उन्नति की कामना की है।[20] छान्दोग्योपनिषद में धर्म के तीन स्कन्दों में यज्ञ, अध्ययन एवं दान को प्रथम बताया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में अहिंसा, सत्य, अस्त्रेय और दान को धर्म का सोपान माना गया है। विष्णु धर्म पुराण के अनुसार दान आदि के द्वारा उभयलोक (इहलोक–परलोक) को विजित किया जा सकता है। इस प्रकार वेदों में निहित मंत्रों एवं कल्याणपरक मंत्र विश्व कल्याण की प्रार्थना के स्रोत हैं। ये मानव अधिकारों के संरक्षक दैविक–विश्व–बन्धुत्व–समाज के धर्म–रक्षक एवं शान्तिपूर्ण विश्व के अग्रदूत हैं। ये उदात्त भाव आर्य समाज के लिए अनुकरणीय एवं कल्याणकारी घटक हैं।

सन्दर्भ सूचीः

त्रहतमित्युदकनाम। निरूक्त 2/25 सत्यं वा यज्ञं वा।
ऋक् 01/2/2, 10/5/2, 5/3, 67/2, 85/1, 92/4 पर (सायण भाष्य)
देखिये ऋग्वैदिक सूक्तों में 'ऋत' शब्द पर ग्रिफिथ का अनुवाद।
ऋग्वेद 1/4/1
ऋग्वेद 10/124/5
सुत्रः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतंयुते। ऋक् 1/41/4
ऋक् 10/61/19
ऋक् 1/90/6
ऋक् 7/20/8
ऋक् 9/4/3
मनु संहिता 10/63
महाभारत अनु० 115/23
न स सखा यो न ददाति सख्ये। सचाभुवे सचमानाय पित्वः।। ऋक् 10/117/4
ऋक् 1/164/33
त्वं जामिजनानामग्ने मित्रो असि प्रयिः। सखा सखिभ्य ईड्यः।। ऋक् 1/75/4
अथर्ववेद 19/15/6
ऋक् 6/75/4
गीता 12/4
ऋक् 1/76/3
ऋक् 10/37/11

सहायक ग्रंथ–

भारतीय संस्कृति एक जीवन दर्शन – श्रीराम शर्मा
भारतीय संस्कृति की भूमिका – हृदयनरायण दीक्षित
वैदिक साहित्य का इतिहास – डॉ० बल्देव उपाध्याय
भारतीय धर्म एवं दर्शन – डॉ० बल्देव उपाध्याय
प्राचीन भारतीय संस्कृति के तत्व – डॉ० शशि तिवारी